❀ भूमिका ❀



दित हो कि अर्वाचीन पद्धत्यनुसार काव्य-रचनादि कार्यों में जैसे अन्य मतावलम्बी मनुष्य उद्यमवंत होते हुए नजर आते हैं वैसे हमारी अद्वितीय पवित्र जैन स्थानकवासी समाज में मुनि महाराज उद्यम करते हुए दृष्टिगत नहीं होते थे, तथापि अब कतिपय मुनिवरों ने साहस व उत्साह कर के इस त्रुटि को भी पूरी करने के लिये समयानुसार काव्य रचनादि करने का प्रयास किया है, जैसे शतावधानी पं० श्रीयुत रत्न-चन्द्र जी महाराज, पं० श्रीयुत अमीऋषि जी महाराज, शास्त्रो-द्धारकर्त्ता पं० श्रीयुत अमोलख ऋषि जी महाराज, व्याख्यान वाचस्पति उपाध्याय श्रीयुत चंपालाल जी महाराज, विद्वान् मुनि श्री घासीलाल जी महाराज, प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमल जी महाराज, इत्यादि, उदाहरण के लिये और भी श्रीमान् पुष्प (फूल) मुनि जी महाराज आप सत्तप शम दम गुण गुणा-लंकृत पूज्यवर श्रीमद्धर्मदास जी महाराज के संप्रदायानुयायी पूज्यपाद श्री १००८ धर्मधुरंधर विद्वद्वर्य धर्मोपदेष्टा श्रीमान् माधवमुनि जी महाराज के प्रशिष्य हैं, आपही ने पूर्ण परिश्रम करके यह हरिगीतिका छन्दोवद्ध "मुनि अनाथी चरित्र" नामक खण्ड काव्य निर्माण किया है, पाठकगण ! मेरा हृदय इस पुस्तक को सुन कर अत्यंत हर्षित हुआ इसलिये मैंने इस

छोटीसी पुस्तक की स्वयमेव नकल उतार ली और छपवा कर आपके कर कमलों में समर्पित करता हूं।

इस पुस्तक के प्रूफ संशोधन आदि कार्यों में उपमन्त्री लाला प्रभुदयाल जी कंसल ने बहुत सहायता की इसके लिये मैं कृतज्ञ हूं।

इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बनाने के लिये उपरोक्त मुनि जी के ही रचित कुछ काव्य रख दिये गये हैं, और कुछ ऐसे संस्कृत के श्लोकों का भी संग्रह किया है जिनको पाठक यदि प्रातःकाल नित्य पठन करने की कृपा करेंगे तो वे अद्भुत रस व अत्यानन्द को प्राप्त कर सकेंगे, हम यहां इतना लिखना आवश्यकीय समझते हैं कि हमको यह श्लोक प्राचीन काल के पूर्वाचार्यों के रचित ऐसे ही उपलब्ध हुए हैं, इसलिये पाठक यदि शुद्ध करके पढ़ने की कृपा करेंगे ऐसी मैं आशा रखता हूं।

इस पुस्तक में कविता कैसी है? इसका तो अनुभव हमारे वाचक स्वयम् ही कर सकते हैं लेकिन हम तो केवल मुनिजी की बाल्यावस्था के प्रथम प्रयास की सराहना करते हुए आपसे अनुरोध करते हैं कि, आप इसे सादर अपनायेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने में जो कोई प्रामादिक अशुद्धियां रह गयी हों तो सुज्ञजन उसे शुद्ध कर पढ़ने की कृपा करेंगे, सुज्ञेषु किंबहुना।

वीर सं० २४४९
भाद्रपद शुक्ला २
सं० १९८०

भवदीय—
अ० पा० चन्द्रभान गर्ग

॥ ॐ ॥

श्रीमद्धर्मदासजित् सूरीश्वरेभ्यो नमः॥

"मुनि-अनाथी-चरित्र"

प्रथम-गुच्छक

मंगला-चरणं

१

सकल सुखदायक सतत 'श्री सिद्ध' प्रभु को भाव से।
करके प्रणाम, सु संयतों को, वंदना चित चाव से॥
वैराग्य उत्पादक चरित, श्री मुनि अनाथी का अहो-
वर्णन करूं सानंद, सब जन! "वीर प्रभु" की जय कहो॥

२

विश्व को आनन्दप्रद "श्री वीर" जिन त्रिभुवन पते।
जगदीश जगदाधार मंगल केलि सद्म सु सन्मते!
सिद्धार्थ नृप कुल-कमल शशधर मात त्रिशला के तनय।
सानिध करो श्री शासनेश्वर हरो मम सब विघ्न भय॥

३

इस श्रेष्ठ भारतवर्ष में कैसे मुनी-जन हो चुके ?
मद-सिंधु में होकर पतित ये ज्ञान नर जो खो चुके ॥
उनके लिये आख्यायिका वर्णन करूं मम कर फते ।
श्रेयस्पते[1] ! श्रेयस्पते !! अमृतपते[2] ! अमृत पते !!

४

मगधाधिपतिराजेन्द्र 'श्रेणिक' नीति का आगार था ।
था सज्जनों का भक्त, शठ का भीष्म[3] कारागार था ॥
ऐश्वर्य-धन-संचय करे वह न्याय नीति प्रयोग से ।
मृगराज क्या करते भला आखेट कुत्सित योग से ॥

५

हैं देश कितने; ग्राम कितने, लोक कितने हैं बसे ।
है आय व्यय का मान कितना, सैन्य कितनी, कोन से—
लेना व देना है मुझे, इत्यादि बातें सोचना ।
निकृष्ट जन को दंड देना, सुष्ठु का दुख मोचना ॥

६

इत्यादि गुण संपन्न श्रेणिक भूप क्रीड़ा के लिये ।
चलता हुआ, होकर सुसज्जित, साथ समुचितता किये ॥
मंडि कुक्षि सुनाम जिस का चैत्य[4] ऐसा था वहां ।
जिसकी करी भरपूर है तारीफ आगम में अहा ॥

---

१ मोक्ष २ मोक्ष, ३. डरावना, ४ बाग ।

७

आकीर्ण नाना द्रुम-लता से, था निसेवित पूर्ण वह।
था पक्षियों द्वारा, कुसुम से प्रखर छादित पूर्ण वह॥
गोत्र[1] कितने दीर्घ लघु थे, शोभ सित[2] उस भूमि पर।
वेस सत्य नंदन वन कहें या और ही उत्कर्ष कर॥

८

उस चैत्य में वह देखता है, एक तरु की मूल में-
सु समाधि प्रस्थित साधु संयत[3], पाप से प्रतिकूल में॥
क्रांति संध्या राग सी, अद्भुत छटा जिस देह में।
द्विजराज[4] ही मानों उतर कर, घुस गया इस गेह में॥

९

मुनि रूप, अनुपम देख राजा, बस हुआ विस्मित यहीं।
करने लगा यह सोच मन में, देव तो नहिं है कहीं॥
क्या कहूं यह स्वर्ग का या मर्त्य लोकोत्पन्न है।
आता नहीं कुछ भी समझ में, रूप अति ही भिन्न है॥

१०

(राजन् हृदय में विचार करता है।)

आश्चर्य उज्ज्वल वर्ण को, आश्चर्य अनुपम रूप को।
आश्चर्य है इस आर्य की वस सौम्यतादि[5] अनूप को॥
आश्चर्य इसकी क्षान्ति को, आश्चर्य इसकी मुक्ति[6] को।
आश्चर्य पूरा, भोग में निःसंगता की युक्ति को॥

---

१ पर्वत, २ शोभसित, शोभा से बंधे हुये, ३ संयम वंत, ४ चंद्र, ५ निश्चय, ६ निर्लोभता,

११

पुनि दे प्रदक्षिण वार गुण,[१] कर पाद वंदन प्रेम से।
बैठा, नहीं अति दूर अत्यासन्न[२] राजा क्षेम से॥
'मगधाधिपति' कर जोड़ मुनि से प्रश्न यों करने लगे।
हे आर्य, हे संयति, मुनीश्वर! शुद्ध प्रज्ञा से पगे! ॥

१२

(राजा मुनि से प्रश्न करता है।)

तारुण्य वय में प्राप्त होकर भोग क्यों त्यागे प्रभो!
ये दिष्ट[३] था इक कार्य का नहिं है सुखोचित, मे[४] विभो!
क्योंकि 'आश्रम' शास्त्र में हैं पाद[५] मुनियों ने कहे।
तिन में हैं चौथे ये कहे चारित्र[६] तुम ने जो वहे॥

१३

बस चाहता हूं पूछना, इतनाहि मुनिवर! आप से।
'संन्यास' स्वेच्छा से लिया है या लिया कुछ ताप से॥
मैं समझता हूं सुदीक्षा, दुःख बिन लेते नहीं।
'क्या भला मिष्टान्न पा कर भी क्षुधित मरते कहीं?'

१४

सुप्रसिद्ध नगरी कौन सी, अरु क्या उपाधी[७] आप के।
हैं पितु महाशय कौन से, ये भ्रम भगाओ काप के॥
ऐसा निवेदन भूप ने, कर जोड़ जब मुनि से किया।
तब मुनि, मुमुक्षु जान कर उस को शुभाशिष्[८] है दिया॥*

---

१ तीन, २ नजदीक, ३ समय, ४ मेरे, ५ चार, ६ चारित्र पांच होते हैं, ७ उपाधि सहित नाम, ८ आशीर्वाद, * ये कवि घटना है।

१५
(मुनि बोलते हैं)

शांति सागर श्री मुनीश्वर; भूप से भाषन लगे ।
वाणी अनिल[1] से शीघ्र सारे भ्रम मुदिर[2] भागन लगे ॥
शांति से श्रेणिक सहर्षित मुनि कथन सुनने लगा ।
मानों हरिण हेवल्लकी[3] का नाद सुनने में पगा ॥

१६

मम जीवनी का हाल सुन राजन्! सभी तू ध्यान धर ।
'नाथ' मेरा है नहीं कोई, जगत में त्राण कर ॥
इसलिये मैं हूं 'अनाथी' नाम भी मेरा यही ।
ऋत[4] ही कहा है स्वार्थ बिन कोई किसी का है नहीं ॥

१७

यह बात सुन 'श्रेणिक' हँसा औ साधु से कहने लगा ।
आप सम हा ! पुन्य वाले का कहो नाथ न सगा ॥
आश्चर्य मेरे को, भला यह बात होती है कहीं ।
गर्भ ग्रहण होवे नहीं, पर सुत प्रशव दे ही सही ? ॥

१८
(राजा कहता है)

क्लेशादि से 'मैं' प्राण रक्षक आज से तेरा बनूं ।
'तू' ऐह लौकिक भोग सारे, भोग, निश्चय मैं भनूं ॥
मित्र ज्ञाती से परिवृत[5] हो, सुसंयति ! तात मैं ।
निश्चय सु दुर्लभ है मनुज भव, बात यह विख्यात में ॥

---

१ वायु, २ धन, ३ वीणा, ४ सत्य, ५ घिरा हुआ ।

१९

(मुनि महाराज फरमाते हैं)

राजेन्द्र श्रेणिक ! क्या कहूं स्वयमेव तूहि अनाथ है ।
तब और का तू क्या बने निःशंक पार्थिव ! नाथ है ? ॥
भ्रम भरी, विस्मय सहित, यह बात सुन भूपति तभी ।
बोला यती से कर विनय, तुम जानते नहिं हो अभी ॥

२०

(राजा अपनी प्रभुता बतलाता है ।)

हय-गय-मनुज-रथ हैं सहस्रों और लक्षों ग्राम भी ।
मृग लोचनी भी हैं बहुत, हैं और सुख अभिराम भी ॥
रमणीय मानव भोग सारे, भोगता हूं नित्य मैं ।
राज्य का पालन करूं, अच्छी तरह, कृत कृत्य मैं * ॥

२१

प्रभृति[१] ऐसी और भी हैं जो मिलीं, मुझको सभी ।
समृद्धि ऐसी प्राप्त, फिर भी 'नाथ' नहिं होता अभी ॥
तो होऊँगा कब 'नाथ' सो तो आप ही बतलाइये ? ।
अयथार्थ मत बोलो मुने ! यह पाप मूल भुलाइये ॥

१-आदि देकर ।

* राजा उस वक्त तक सांसारिक भोगों को ही पाकर कृत्य कृत्यपना समझता था क्योंकि तब तक वह जैन नहीं था अपितु बौद्ध मतावलम्बी था ऐसा ग्रंथान्तरों से पाया जाता है ।

२२

(मुनि पुनः कहते हैं)

तैनें कहा जो ठीक है वो ज्ञात है मुझ को सभी।
पर क्या बनें तू नाथ इनका, दुःख देवेंगे कभी॥
रे भूप! प्यारी, पुत्र, सारे ही धरे रह जायँगे।
हा नाथ मेरे, नाथ मेरे, बस यही कह पायँगे॥

२३

इतने कथन पर सभ्य जन! तू नाथ बनता है अरे।
रे! शोच निज हृदि ज्ञान कर, ये स्वार्थ से तुझ पर मरे॥
जब करेगा काल तेरा ग्रास तब तू देखना।
कोई चलेगा साथ तेरे ना यही सब पेखना॥

२४

तू जानता नहिं है, नराधिप! नाथ होने की कथा।
किस सूत्र से उत्पत्ति इस की, अर्थ क्या इसका तथा॥
मैं नाथ और अनाथ का अब भेद बतलाऊं तुझे।
अव्यग्र मन कर के श्रवण कर, मर्म समझाऊं तुझे॥



नोट—इस परिच्छेद में कई काव्य कवि की घटना पर निर्भर हैं।

द्वितीय-गुच्छक

१

कौसंबि नगरी एक थी, प्राचीन पुर को भेदनी ।
श्री[1] कुंज[2] तरु[3] सर[4] से सुशोभित थी जहां की मेदनी[5] ॥
रहता वहां मेरा पिता, सम्पूर्ण सद्गुण से भरा ।
"प्रभूत धन संचय" सुसंज्ञा,[6] धैर्य में मानों धरा ॥

२

द्रव्य अक्षय, इंदिरा[7] मानों, चरण चेरी बनी ।
कीर्त्ति थी प्रख्यात, जन ऐश्वर्य के वे थे धनी ॥
उन श्रेष्ठ के मैं सुत हुआ, उत्पन्न राजन् ! गोद से ।
रे ! कूदता अरु फाँदता मैं वृद्धि पाया मोद से ॥

३

रहते हुवे मेरी अवस्था जब हुई यौवन मयी ।
सहसा ! उसी दम हो गई उत्पन्न दुर्घटना नयी ॥
अतुल आमय[8] अक्षि में, सर्वाङ्ग में राजन् ! हुआ ।
विपुल दाघ ज्वर त्वरित, मानों रुजा[9] भाजन् हुआ ॥

४

शारीरिकी विवरांतरों में, परम तीक्ष्ण शस्त्र ज्यों !
क्रुद्ध हो वैरी चुभावे, अक्षि पीड़ा, भूप ! त्यों ॥

---

१ लक्ष्मी, २ महल, ३ वृक्षादि, ४ तलावादि, ५ पृथ्वी, ६ नाम
७ लक्ष्मी, ८–९ रोग ।

शक्र का शतकोटि[1] है अत्यंत दारुण तर यथा।
कटि में दरद उत्तंस[2] में भी; मान ले राजन्! तथा॥

५

आये हुवे मेरे लिये आचार्य विद्वद्वर्य थे।
मंत्र विद्या तंत्र विद्या से निपुण, गुरु वर्य थे॥
शास्त्र वैदिक, पूर्ण ही अध्येन जिन ने था किया।
ऐसे सुयोग्य वहां, प्रतिष्ठा पत्र जिन ने था लिया॥

६

सम्पूर्ण वे मेरी चिकित्सा शीघ्र ही करने लगे।
हित कर चतुर्विध[3] से सुखोचित औषधी देने लगे॥
वे थक गये सब कृत्य कर, हा! दुःख गया मेरा नहीं।
मैं बिल बिलाता ही रहा 'निर्नाथता' मेरी यही॥

७

रे भूप! मम सुख शांति हित, सर्वस्व तन-मन से दिया।
मेरे पिता, का कृत्य, ये भी, एन[4] ने निर्फल किया॥
भूप! दुःख इत्यादि से मोचन हुआ मेरा नहीं।
तब बिल बिलाता ही रहा, 'निर्नाथता' मेरी यही॥

---

१ इंद्र का वज्र, २ मस्तक, ३ वैद्य विद्वान्, तथ्य औषधी, रोगी की इलाज कराने की इच्छा, रोगी की सेवा करने को मनुष्य, ४ पाप कर्म,

८

दुःखाग्नि से जनयित्रि[1] मेरी दग्ध होती थी वहां ।
निर्वाच्य थी उस की दशा, जल पान उसको था कहां ॥
किंतु दुःख कृशानु[2] से मोचन किया मुझको नहीं ।
बस बिल बिलाता ही रहा, 'निर्नाथता' मेरी यही ॥

९

सोदर्य[3] भी मेरे वहां थे ज्येष्ठ और कनिष्ट भी ।
थे दुःख से वे भी दुखी, मम[4] मित्र-ज्ञाती-इष्ट-भी ॥
किंतु दुःख कृशानु से मोचन किया मुझको नहीं ।
मैं बिल बिलाता ही रहा, 'निर्नाथता' मेरी यही ॥

१०

ज्येष्ठ भगनी आदि ले सम्पूर्ण ही परिवार था ।
मैं प्रेम वश, राजन् ! बना सिर मौर था; सरदार था ॥
किंतु दुःख दावाग्नि से मोचन किया मुझ को नहीं ।
मैं बिल बिलाता ही रहा, 'निर्नाथता' मेरी यही ॥

११

सीमंतनी[5] मेरी पतिव्रत धर्म में अनुरक्त थी ।
वह अप्सरासी अहर्निशि मम मूर्त्ति में आसक्त थी ॥
अश्रु पूरित नेत्र से मे हृतनलिन[6] को पोषती ।
स्वसुरादिकों से हो सलज्जा अंग निज संकोचती ॥

---

१ माता, २ अग्नि, ३ सोदर्य भाई, ४ मेरे, ५ स्त्री, ६ हृदय कमल ।

१२

चारों तरह का खाद्य भोजन ❀, गंध माळादिक, सभी ।
राग-रंग-स्नान राजन् ! और क्रीड़ा दिक तभी ॥
मम ज्ञात वा अज्ञात में, वह भुक्त भोगिन ना बनी ।
थी रात-दिन रहती विचारी पास मेरे ही ठनी ॥

१४

क्षण मात्र भी वह मोह वश, मुझ से अलग होती नहीं ।
हा ! क्या दिवस में कोक कोकी भी पृथक् रहते कहीं ? ॥
किंतु दुख दावाग्नि से मोचन किया मुझ को नहीं ।
मैं बिळ बिलाता ही रहा, "निर्नाथता" मेरी कही ॥

१५

दुःख मेरा जब किसी जन से मिटाया नहिं गया ।
दुःख से दुखित हो उस समय बोला प्रभू से कर दया ॥
दुर्धर, सहन, करना जो आमय आज वो मैंनें सहा ।
निःसार इस संसार में, अब दूर कर, "मैं मर रहा" ॥

१६

हा नाथ ! हा जगदीश ! ईश्वर ! क्या बुरा ऐसा किया ।
हैं मात-पितु-निज भ्रात-भगिनी-किंचिदपि दुःख ना लिया ॥
"सच ही कहा कोई किसी का दुःख मिटा सकता कहीं ?" ।
समझा तभी, 'निर्नाथ' मैं, मम नाथ है कोई नहीं ॥

---

*असणं, १ पाणं, २ खाइमं, ३ साइमं ४, १ रोटी-दाल-चावल-तिल-इत्यादि, जिसके भक्षण करने से उदरपूर्ति हो, । २ शुद्ध जल । ३ फलाहार-बरफी पेढा रबड़ी, लड्डू-दूध, इत्यादि, । ४ मुख शुद्धि की वस्तुएं लवंग इलायची-सुपारी, पान-गुटिका-दालचीनी, इत्यादि,

१७

तब ही हृदय में शोच मैंने, प्रण ग्रहण ऐसा किया ।
यदि सकृत[१] अति विपुल पीडा मुंच दे मुझ को पिया ! ॥
तो शरण तेरी ही ग्रहूं, मैं विश्व बंधन तोड कर ।
शम-दमादिक-गुण लहूं-आरंभ से मुख मोड़ कर ॥

१८

'मैं' चिंतवन ऐसा किया बस वेदना यों खो गई ।
जैसे शिखावल[२] देख अहि पावें नहीं, हेरा कहीं ॥
रात्रि ज्यों ज्यों क्षीण होती, वेदना त्यों त्यों यहां ।
लुप्त होती ही चली, ज्यों भानु से रजनी महा ॥

१९

शांति में सुनिमग्न होते ही नृपति ! मैं सो गया ।
आमोदप्रद उस रात्रि में उद्भव[३] मनों पाया नया ॥
प्रत्यूष[४] ही उठ बांधवों से पूछ, "मुनि पथ" है लिया ।
अणगारता को धार, "प्रण को पालना स्वीकृत किया" ॥

२०

निज प्रण निभाना श्रेष्ठ जन का ही परम कर्तव्य है ।
प्रण त्याग दें, उनका नहीं धिक् पात्र क्या जीतव्य है ? ॥
प्राण सब ही झोंक दें, निज-प्रण-निभाने के लिये ।
वे ही पुरुष हैं वीर, अरु वे ही मरे भी हैं जिये ॥

१-एक वार, २-मयूर, ३-जन्म, ४-प्रातःकाल,

२१

निज आत्म अरु पर आत्म का अब नाथ भूपति मैं हुआ ।
सम्पूर्ण प्राणी भूत का, भी प्राण रक्षक मैं हुआ ॥
त्रस[१] जीव जो निर्नाथ हैं मैं नाथ उनका भी बना ।
'श्री वीर' के निर्देश में, मैं रात दिन रहता ठना ॥

२२

निज चरित निर्नाथता का सब सुनाया है तुझे ।
तव[२]-पूर्ण हित कर—सौख्य मय 'उपदेश' करना है मुझे ॥
क्योंकि दर्शन साधु के निष्फल कभी जाते नहीं ।
घन गर्जना निशि में हुई निष्फल भला जाती कहीं ? ॥

१—चलते फिरते जीव, २—तुझ को,



तृतीय-गुच्छक

१

पुन्य राजन् ! पाप का कारण यही इक चित्त है ।
इस चित्त ही से शुद्ध है, औ चित्त ही से लिप्त है ।।
जैसे कि पंकोत्पत्ति का कारण यही कीलाल है ।
पुनि वारि ही से शुद्ध होवे, चित्त का यह जाल है * ।।

२

और राजन् ! आत्म निज है सरित वैतरणी यही ।
पुनि शाल्मली पादप अनृत जो है बना वह भी यही ।।
आत्मैव निज है कामगोत्रा[1] और नंदण वन महा ।
है यही दुख रूप राजन् अरु यही दुःखा पहा ।।

३

क्षेत्रज्ञ[2] ही अपना रे पार्थिव ! कर्म कर्ता जान ले ।
अरु भोक्ता भी है यही, औ मित्र-वैरी-मान ले ।।
अच्छा-बुरा-चैतन्य ही है, और है कोई नहीं ।
दे व्यर्थ दूषण दूसरे को, शाठ्य दिखलाना वहीं ।।

४

इतर नृप ! हैं और भी निर्नाथता की रीति जो ।
कातर पुरुष ताको श्रवण कर हैं उठाते भीति जो ।।
अर[3] चित्त की चांचल्यता को त्याग, क्ष्मा भृत ! मन धरो ।
निर्ग्रंथ निर्मल धर्म, जासे तूर्ण[4] शिव रमणी वरो ।।

१ काम गोत्रा, [कामधेनू], २ आत्मा, ३-४ शीघ्र,

* नोट—इस गुच्छक में मुनि महाराज राजा को समझाने के लिये हर तरह का उपदेश करेंगे ।

५

पंच महाव्रत धार कर पालें यथोचित जो नहीं।
संसार सागर से अधम वे पार क्या पाते कहीं ?॥
लुब्ध रस आस्वाद में, मन वाह[1] वश जिनका न हो।
वे मूल से बंधन कभी क्या छेद सकते हैं कहो ?॥

६

समिति, ईर्या—एषणा—आदान निक्षेपण—तथा। ❀
भाषा-जुगुप्सा-आदि की अनिवृत्ति में पावें व्यथा॥
इत्यादि भूपति ! साधुता की बात किंचिन्मात्र भी—
हा ! हैं नहीं, सत्मार्ग-वे, कैसे लहें, "हत-भाग्य-धी"॥

---

१ अश्व,

❀ समिति पांच तरह की होती हैं यथा ईर्या+ समिति-पृथवी को देख कर चलना, भाषा+··· । मिथ्या भाषण आदि न करना, एषणा+··· (शुद्ध आहार लेना जो कि ४२ दूषण रहितहो) आदाननिक्षेपण···वस्त्र पात्रों को यत्न पूर्वक उठाना। जुगुप्सा+···यत्न पूर्वक मात्रादि परिष्ठापन करना इत्यादि इनों के बहुत भेद हैं वे उत्तराध्ययन सूत्र की २४ वीं अध्याय में हैं उसके पठन करने से ज्ञात हो सकता है, जिन महाशयों को इन्हें समझाना है वे उसे देखें, तो पूर्णतया ज्ञात हो जायगा॥

७

है मुण्ड मस्तक को किया, बस साधु उत्तम बन गये ।
पर मुण्ड मन को नहिं किया, क्रोधी महा मायी भये ॥
यदि तप–नियम–व्रत–धार लें तो मन रहे क्लेशित सदा ।
ऐसे मनुज भव-सिन्धु से क्या पार पाते हैं कदा ॥

८

निःसार जैसे रत्नि[1] पोली, और कुत्सित रिक्थ[2] ज्यों ।
पंच यम विन मूढ वे, निःसार हैं रे भूप ! त्यों ॥
राढामणी[3] वैडूर्य सम देदीप्य होता क्रांति से ।
पर दत्त आगे क्या भला बहु मूल्य पाता भ्रान्ति से ॥

९

लिङ्ग यति का धार कर, विपरीतता करते सभी ।
बनते सुसंयति, है नहीं संयति पना किंचित् कभी ॥
हम साधु हैं, इस व्याज[4] से आजीविका करते यहां ।
वे मुग्ध हा ! परलोक में हैं वेदना पाते महा ॥

१०

प्राण घातक क्ष्वेड[5] जिसने जान करके है पिया ।
निज प्राण हनने के लिये अप शस्त्र सन्मुख है किया ॥
वेताल साधक मंत्र निर्विधि से किया है जान कर ।
विष तुल्य (हिंसा धर्म) ऐसे मूढ़ करते मान कर ॥

---

१ मुट्ठी, २ द्रव्य, ३ कांच, ४ कपट, ५ हलाहल जहर ।

११

स्वप्न* लक्षण ‡ और जो भवितव्य को निश्चय कहैं।
आश्चर्य—कारक—कौतुहल, नित ही बताते जो रहैं॥
कापट्य से मंत्रादि कर निर्वाह अपना नित करैं।
ऐसे मनुज मरणांत में क्या दंडधर § से नहिं डरैं॥

१२

दुःशील [1] होता जो मनुज, प्रत्यक्ष फल पाता यहां।
आगे नरक—तिर्यंच—गति धारण करे निश्चय इहा [2]॥
ऐसा समझ दुःशील त्यागो, और तन-मन-धन-सदा।
इक धर्म में ही जोड़ दो, राजन्! सुखी होवो तदा॥

१३

मातृ वत् पर दार को राजन् सदा जानों सही।
अरु मृत्तिका सम द्रव्य पर का आज से मानों सही॥
सम्पूर्ण प्राणी-भूत-को निज तुल्य कर के जानना।
सुख मूल-हित कर बात तीनों श्रेष्ठतर कर मानना॥

१४

राजेन्द्र! उद्देसिक[3] तथा जो क्रीत-कृत[4] भोजन सदा।
करते रहें, त्यागें न भक्षाभक्ष को किंचित कदा॥
पावक सदृश वन सर्व भक्षी, पुष्ट तन कर जायँगे।
पर लोक में पर मुग्ध वे निज के किये फल पायँगे॥

---

* स्वप्न विचार, ‡ सामुद्रिक में कहे हुए चक्रादिक लक्षण, § यमराज
१ खोटा आचार, २ खेद, ३ सम्पूर्ण जगत के साधुओं को जो भोजन बनाया जाय उसको ग्रहण करे, ४ मोल लाया हुआ,

१५

मृत्यु मुख में प्राप्त हो, इत्यादि बातें सोचते।
हा ! व्यर्थ खोया जन्म हम, यदि धर्म निर्दय मोचते ॥
तो सुखी होते सदा को, फल कटुक क्यों भोगते।
दुष्कर्म यदि करते नहीं, "पत्थर पड़े तुझ में मते" ॥

१६

यों ताप कर भव खो दिये दो भोग कर फल शाठ्य का।
जैसे रजक का श्वान निज घर का रहा ना घाट का ॥
मुग्ध हो, 'जिण मार्ग' उत्तम त्याग, रस-गृद्धी हुवे।
बस मूढ वे रस गृद्ध कुररी* के सदृश, पीड़ित-मुवे ॥

१७

शुभ-श्रेष्ठ-निर्मल ज्ञान-गुण उपपेत[२] शासन[३] है यही।
सुन कर इसे मेधावि[४] जन त्यागें कुपथ ग्रंथी गही ॥
धारें (दया मय धर्म) मुनि-चारित्र-को पालन करें।
वे, रम्य-ध्रुव-अति श्रेय-सुख कर मुक्ति-वामा को वरें ॥

(अनाथी मुनि की महिमा।)

१८

श्रीमन् महातप वान् मह निर्ग्रंथ मह प्रज्ञा घनी।
मह यश धनी मह श्रुत धनी ऐसे 'अनाथी' हैं मुनी ॥
कृपया उन्हों ने भूप को सम्यकत्व वितरण है दिया।
मद अंध नृप का हृद् कमल मुनि भानु नें विकसित किया ॥

१९

संतुष्ट हो निज चित्त में, नृप जोड़ कर कहने लगा।
निर्नाथता का अर्थ अत्र जाना मुने ! मम भ्रम भगा ॥

---

* मांस लेती हुई पक्षिणी, १ हे बुद्धि, २ सहित, ३ शिक्षा, ४ बुद्धिवान्,

निश्चय मनुज भव आपका है धन्य, और सणाथ हो।
बांधव सहित भी आप हो, मैं मुग्ध हों निर्नाथ हों ॥

२०

अनुयोग[1] कर, तव[2] ध्यान में, जो विघ्न मैंने है किया।
आमंत्रणा, कर भोग की, दुष्कर्म बन्धन कर लिया ॥
इत्यादि जो अपराध मेरे आज तुम से हैं बने।
उसकी क्षमा मैं चाहता हूं कर क्षमा भगवन् मुने ! ॥

२१

पंचास्य[3] सम राजेन्द्र श्रेणिक परम भक्ती से अहो।
संस्तुति करी, सकुटुम्ब सादर और धर्मा सक्त हो ॥
हर्ष से हो पूर्ण नृप, मुनि-पाद-वन्दन कर तदा।
निज धाम जा, मुनि का कथित सद्धर्म को करता सदा ॥

२२

पश्चात् मुनिवर भी वहां से रम गये भूखण्ड पर।
जैसे विहग निर्मोह हो, जाते दशों दिशि मोद कर ॥
"त्रय गुप्तियों से गुप्त हों त्रय दंड से निर्दंड हों"।
ऐसा दिवस दो 'वीर जिन' ! ज्यों संघ में आनन्द हों ॥

दोहा।

न्यूनाधिक अर्थांश में, सूत्र विरुद्ध हि कोय।
कह्यो होय ताको प्रभो ! मिथ्या दुष्कृत मोय ॥
श्री गुरुदेव प्रसाद से, रच्यो ग्रंथ सुख कंद।
जाके सुनते ही त्वरित, "पुष्प" लहे आनन्द ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

---

१ प्रश्न, २ तेरे, ३ सिंह।

❀ ॐ ❀

१०८ श्रीमान् फूलमुनि जी महाराज के बनाये हुये
कुछ और भी दर्शनीय पद्य उद्धृत करते हैं ।

❀ अस्थि का निर्घोष ❀

१

का कुल्य * पर कोई मनुज का पद अचानक से पड़ा ।
सत्वर तड़ित सम अस्थि बोली—गर्व करता तू घड़ा ॥
सौन्दर्यता तेरी तरह की, प्राप्त की थी हम कभी ।
किन्तु कर्मों के उदय से यह दशा पाई अभी ॥

२

मति शून्य नर ! दिल में जरा तू प्रेम लाया कर मुवे ! ।
मत, मस्त हो, तू गर्व में, नर देह से पाये हुए ॥
गर्व तेरा एक दिन में ही हवा हो जायगा ।
अरमान दिल का एक दिन सहसा ! सभी खो जायगा ॥

३

क्या तुझे मालुम न थी की मैं पडी हूं इस जगह ।
ऐसी व्यथा तेंने करी, ज्यों लवण घात्रों पर अह ॥
"श्रेष्ठ भारतवर्ष सारा सद्गुणों का धाम है ।
पर तुम सरीखों ने किया, यह नाम भी बदनाम है" ॥

४

कंज पुंजों से रची शय्या शयन के योग्य थी ।
कंज-नयनी, कंज-मुख, वीर-स्नुषा मम भोग्य थी ॥

---

* हड्डी,

मृदुल इच्छित रेशमी से आदि मेरे वस्त्र थे।
जिनमें जटित थे मूल्य धारी रत्न ऐसे शस्त्र थे॥

५

अक्षि दोनों, देखने में, हर्ष पूर्ण अभीक्ष्ण थी।
कर्ण से सुनने में पूरी शक्ति भी अति तीक्ष्ण थी॥
ऐश के सामान सारे ही हमारे पास थे।
उच्च—आयत और सुन्दरता—भरे आवास थे॥

६

नृत्य—केकी—की तरह, करते उमड़ता जब मदन।
लावण्यता से भासता चंद्रस्थ मानों है वदन॥
शारीरिकी अरु मानसिक, इत्यादि होते थे गद—न।
सत श्रेष्ठ लक्षण से भरे, हम दीखते मानों सदन॥

७

होते जहां थे कहकहे मचते जहां थे चहचहे।
हम दिल को खुश करते, जहां, मन की तरंगों में वहे॥
किन्तु सारे ऐश के सामान, हा! जाते रहे।
ना वे रहे, ना वह रहे रुद्राग्नि ज्यों तृण को दहे॥

८

ऐसा दुरित ने आनकर चक्कर हमारे को दिया।
सामर्थ्य बाहिर है कथा, सुखहीन, दैन्योचित्त, किया॥
ऐसी निडरता से तू हम पर पैर मत रख दुहिया।
"गुरु-वर्य्य" ने "देवानु प्रिय!" यह उच्च पद, तुमको दिया॥

नित्य 'भला' सब का करे, दिव शिवादि सो प्रात।
फल विलोम निश्चय यहां, कर देखो सहु भ्रात॥

❀ अन्य बोध ❀

'उत्तम' इच्छें मान को, 'मध्यम' धन अरु मान ।
धन की इच्छा 'अधम' के, मान महत धन जान ॥

१

भरत क्षेत्रज मानवो रे ! धर्म करना चाहिये ।
'श्री वीर' स्वामी के कथन पर ध्यान धरना चाहिये ॥
पालो दया षट् काय की यह ही प्रभू का धर्म है ।
आरूढ़ हो इस धर्म पर यह ही तुम्हारा कर्म है ॥

२

प्राण क्यों नहिं जांय चाहे किंतु धर्म न छोड़ना ।
कर्त्तव्य वीरों का यही, मुख कातरों से मोड़ना ॥
जैसे कि राजा 'मेघरथ' खग एक की पाली दया ।
धन-स्वात्म-को अर्पण किया; उस सत्व पर करके मया ॥

३

प्राण पर के लूट कर निज प्राण की रक्षा करें ।
ऐसे मनुज भव-सिंधु में गोते बहुत खाते फिरें ॥
धन्य है उन मानवों को कोटि, परहित के लिये—
जीतव्य की लिप्सा न कर निज प्राण जिनने दे दिये ॥

लक्ष चौरासी तरह के वेष निश्चय लाविये ।
री भावने की कामना से स्वामिढिग में आवियो ॥
मम स्वांग लखि हो खुश हुए तो मुक्ति सुखमय दीजिये ।
यदि देख कर हो खीजते माफ़ी सभी की कीजिये ॥

* उपदेश *

रे मूढ़ ! मति के हीन मानव, सोच निज हृदि, ज्ञान दे।
सौदामिनी सम चपल माया अथिर यौवन ध्यान दे ॥
अब भी समझ और चेत कर बीती चली है यामिनी।
पुण्य सींचो, प्रेम पोषो, त्याग पर धन कामिनी ॥
ऐसा सुअवसर पाय करतू प्रीति प्रभु से जोड़ दे।
ध्यान धर कर ईश का, निज कर्म बंधन तोड़ दे ॥
कृत्य मानव देह के कर न्यायकारी नीति से।
निज शौर्य्यता सबको दिखा "मत क्रोष्टु-सम डर," भीति से ॥

ईश प्रार्थना।

१

वृन्दारकों के वृंद में श्री वीर बल्लभ तर घने।
दुःखित जनों की आश पूरन कल्प तरु वर सम बने ॥
सृष्टीश तुमरे चरण कमलों में बिडौजा सिर धरें।
और खग-पति, भूमि--पति, नित भक्ति युत वंदन करें ॥

२

भव जलधि के दीन शिष्यों की करो रक्षा प्रभो ! ।
चरण चाकर, हैं भ्रमाकर, ज्ञान इन को दे विभो ! ॥
विपर्य्यय ऐसी तरह का आन इन में है अडा,।
जिस का कथन सामर्थ्य बाहिर है अपितु कहना पडा ॥

३

शुभ नजर तेरी प्रभो ! जब से नहीं हो पाइ है।
तब से उपद्रव ने यहां ! काषट्यता फेलाइ है ॥

करता परस्पर द्वेष सब में भ्रातृ भाव विनाश कर।
मान इच्छा में डबोया विश्व सारा खास कर॥

४

एक मानव दूसरे को देख जल भुन खाक हों।
प्रकृति ये सम श्वान के स्वीकृत करी हम पाक हों॥
ऐसी व्यवस्था नाथ देवो, जोड़ कर अर्जी करें।
डंका पुजावें सत्य का—जगदीश! भव पीड़ा हरें॥

५

बस प्रार्थना येही करो स्वीकार स्वामी आज से।
दो ऐक्यता हे नाथ! अब, अर्जी करें सरताज से॥
पारस्परिक द्वेषादि जासे फेंक दें जड़ काट के।
प्रेमादि सद्गुण धारलें, अरु सत्य को भी डाट के॥



हो जय विजय पूज्य श्री **माधव** मुनी माहाराज की।
यह धन्य दिन है धन्य घटि है वीर भारत आज की॥
गुरु सदृश श्रीसंघ में, पर-मान-खंडन में अहो!।
उच्चारते हैं वृंद श्रावक "मुनि" चिरंजीवी रहो॥



माको राखत दूर, धर्म प्ररूपें विश्व में।
वनिता त्यागी शूर, मुनि ऐसे मम उर वसो॥



शुभम् भवतु

* ॐ *

पंच परमेष्ठी स्तोत्र ।

१

परमेष्ठी नमस्कारं,
सारं नव पदात्मकं ।
आत्म रक्षा करं वज्रं,
पंजराभ्यम् स्मराम्यहम् ॥

२

ॐ नमो अरि हंताणं,
शिरस्कं शिरस्तथा ।
ॐ नमो सिद्धाणं,
मुखे मुखे पटाम्बरं ॥

३

ॐ नमो आयरियाणं,
अंग रक्षाति शायिनी ।
ॐ नमो उवज्झायाणं,
आयुधं हस्तयोर्दृढं ॥

४

ॐ नमो लोए सव्व साहूणं,
मंचके पादयोर्शुभं ।
एसो पंच नमुक्कारो,
शिला वज्रं महीतले ॥

५

सव्व पावप्पणासणो,
वप्र वज्र मयोर्वहिः ।
मंगलाणंच सव्वेसिं,
खादि रंगार खातिका ॥

६

स्वाहां तंच पदं ज्ञेयम्,
पढमं हवइ मङ्गलं ।
वप्रो परि वज्रयोमयं,
प्रधानं गात्र रक्षणं ॥

७

महा प्रभाव रक्षियं,
क्षुद्रोपद्रव नाशिनी ।
परमेष्ठी पदोद्भूता,
कथितं पूर्व सूरिभिः ॥

८

यैश्चैवं कुरुते रक्षं,
परमेष्ठी पदं सदा ।
तस्य न स्यात् भयं-व्याधि,
राधिश्चापि कदाचनः ॥

इति

—✻✻✻—

वीर स्तुति

वीरस्सर्व सुरा सुरेन्द्र महितो,
वीरं बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणाभि हृतः स्व कर्म नि चयो ।
वीराय नित्यं नमः ॥
वीरा त्तीर्थमिदं प्रवृत्ति मतुलं ।
वीरस्य घोरं तपो ।
वीरे श्री-धृति-कीर्त्ति-कांति निचयः।
श्री वीर भद्रं दिश ॥

—✻✻✻—

चतुर्विंशतिः स्तोत्र ।

१

वंदे धर्म जिनं सदा सुख करं,
चंद्र प्रभं नाभिजं ।
श्रीमद्वीर जिनेश्वरं जय करं,
कुंथुं च शांतिम् जिनम् ॥
मुक्तिः श्रीफल दायिनं त मुनियं,
वंदे सुपार्श्वं विभुः ।
श्रीमन्मेघ नृपात्मजं च सुख दं,
पार्श्वं मनोभिष्टदम् ॥

२

श्री नेमिश्वर सुव्रतौ च विमलं,
पद्म प्रभं सांवरं ।
सेवे संभव शंकरं नमि जिनम्,
मल्लि जया नन्दनम् ॥
वंदे श्री जिन शीतलं च सुविधिं,
देवाजितं मुक्तिदं ॥
श्री संघं धनु पंच विंशति तनु-
शांत्यादरं वैश्नवम् ॥

३

स्तोत्रं सर्व जिनेश्वरे रभि गतं,
मन्त्रेषु मन्त्रं वर ।
मेतत्संगत यंत्र मेव विजय-
द्रंध्यै लिखित्वा शुभैः ॥
पार्श्वे संध्रियमाण एव सुखदो,
मांगल्य माला प्रदो ।
वामांगेव निता नर स्तदितरे,
कुर्वन्ति यः भावतः ॥

४

प्रस्थाने स्थिति युद्ध वाद करणे,
राजादि संदर्शने ।
मार्गं स्वति विपमे दवाग्नि पटले,
चिंतादिभिर्नाशने ॥
वस्त्रार्थं सुख हेतवे धन कृते,
रक्षंतु पार्श्वे सदा ।
यंत्रोयम् मुनिना नृसिंह कविना,
संग्रंथितः सौख्यदः ॥

—✻✿✻✿✻—

वीरं पार्श्वं नमि सुपार्श्वं सुविधिः,
श्रेयांस मल्लिः शशिः ।
नेमि र्नाभिज वासु पूज्य विमलो,
पद्म प्रभः शीतलः ॥
कुंथुः शांत्यभि नन्दनार्ह न्मुनि-
र्धर्मोजितः संभवो ।
ऽनंतः श्री सुमतिश्च तीर्थं पतयः,
कुर्वन्तुणो मंगलं ॥



श्रीमद्वीर जिनस्य पद्म नद तो,
निर्गत्यतं गौतमम् ।
गंगा वर्त्त मुखे तिया विणदघो,
मिथ्यात्व वैताढ्यकम् ॥
उत्पत्ति स्थिति संहृती त्रिपथगा,
ज्ञानाम्बुधेर्मध्यमा ।
सा मे कर्म मलं हरत्व विकलं,
श्री द्वादशांगी नदी ॥



नाभेयादि जिना प्रशस्त वदना,
ख्याता चतुर्विंशतिः ।
श्रीमंतो भरतेश्वरः प्रभृति यो-
यें चक्रिणो द्वादशः ॥
ये विष्णु प्रति विष्णु लांगलधरा,
सप्ताधिका विंशतिः ।
सर्वेते भयदात्रिषष्ठि पुरुषाः,
कुर्वंतुणो मंगलं ॥



ब्राह्मी चंदन बालिका भगवती,
राजी मती द्रौपदी ।
कौशल्या च मृगावती च सुलसां,
सीता सुभद्रा शिवा ॥
कुन्ती शीलवती च नलस्य दयिता,
चूडा प्रभा वत्यपि ।
पद्मा वत्यपि सुन्दरि दिन मुखं,
कुर्वंतुणो मङ्गलं ॥



आशीर्वादात्मक ।

श्रीमन्धर्म धुरंधरो धृति युतो,
विद्वज्जनै स्सेवि तो ।
निर्दर्पः सुविनायको गण युतो,
विख्यात कीर्त्तिः क्षितौ ॥

श्राद्धानां प्रिय कारकोऽस्ति महतां,
जैनार्थ संशोधकः ।
साधुः श्री मुनिराज राज मुकुटो,
जीयाच्छतं "माधवः"

ॐ शांति ! ॐ शांति !! ॐ शांति !!!



    

पुस्तक मिलने का पता--

प्रभुदयाल कंसल जैन,

लोहामंडी-आगरा।

प्रकाशक-चन्द्रभान गर्ग, लोहामंडी-आगरा।

मुद्रक-सत्यव्रत शर्म्मा, शान्ति प्रेस, मोतीकटरा-आगरा।